THE HINDU

Date:26-06-21

Future State

Restoration of Statehood should be at the start of the revival of the democratic process in J&K

EDITORIAL

Political leaders from Jammu and Kashmir (J&K) who attended a meeting called by Prime Minister Narendra Modi on Thursday came away with a sense of optimism: restoration of Statehood is somewhere on the horizon, even if a total reversal of the withdrawal of the special status remains unlikely. The meeting itself was a surprise, and came at a time when expectations of any quick resolution were very low. But the fact that a spectrum of political leaders got the invitation from the Centre without any set pre-conditions had raised hopes of progress. Eventually, the meeting gave reason to Kashmir's political class to believe in possibilities that did not seem to exist just a week earlier. But restoration of Statehood to J&K, which was reorganised as two Union Territories, should be the first step in the revival of the democratic political process and not the culmination of some elaborate negotiation strategy. Mr. Modi described the meeting as an "important step in the ongoing efforts towards a developed and progressive J&K". While committing to strengthen grassroots democracy, he called for quick delimitation of constituencies, after which legislative polls could be held. Home Minister Amit Shah insisted the restoration of Statehood will follow delimitation and elections. Not surprisingly, many participants were not convinced by this sequence suggested by the Centre. But the positives are that the long meeting was freewheeling, without rancour and all parties were united in the demand for the restoration of Statehood. Most participants also sought an assurance to return the domiciliary rights concerning land and State services, but considering the BJP's strident position, this might be difficult.As Mr. Modi argued, the focus must be on the future, but this will have to be built on the trust and cooperation of the people of J&K. Decades of turmoil have created unique problems of governance and mistrust. The NC and the PDP, with all their deficiencies, remain India's best messengers to the people of the Valley. In deciding to engage them, and other parties, the Centre has made a departure from its earlier position. By seizing the opportunity, these parties also showed maturity. Global and domestic factors might have nudged the Centre towards what appears to be a tentative accommodation of other viewpoints. But the political challenge to its decision to hollow out Article 370 is all but fading. The restoration of Statehood has been placed so far down the path that any discussion on special status is unthinkable in the near future. In that sense, the Centre and the BJP have irreversibly

reset the conversation on J&K. That success should not blind them to the resentment among the people. Mr. Modi and Mr. Shah will have to look forward to the future rather than being bound by their past rhetoric on Kashmir.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:26-06-21

वैश्वीकरण, नया और पुराना

टी. एन. नाइनन

वैश्वीकरण के कुछ पारंपरिक स्वरूप (वस्तुओं, मुद्रा और लोगों का मुक्त आवागमन आदि) आंशिक तौर पर वापसी पर हैं लेकिन नए एजेंडों के केंद्र में आने के साथ ही वैश्वीकरण बदल भी रहा है।

ये नए कदम जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने, वैश्विक कंपनियों पर कर लगाने, आतंकवाद से निपटने, टीकों को साझा करने आदि से संबंधित हैं। एक अधिक एकीकृत विश्व में सीमा पार की दिक्कतें विभिन्न देशों को मजबूर कर रही हैं कि वे एक साथ आएं। यह सब ऐसे समय हो रहा है जब वैश्वीकरण के पारंपरिक तत्त्व शिथिल हो रहे हैं। पुराना वैश्वीकरण भारत के लिए बेहतर था जबकि नए वैश्वीकरण में अच्छी-बुरी दोनों तरह की बातें हो सकती हैं। उदाहरण के लिए विश्व व्यापार की वृद्धि दर वैश्विक जीडीपी की वृद्धि दर से धीमी हो गई है। इसने एक दीर्घकालिक रुख को महत्त्वपूर्ण ढंग से पलट दिया। बीते सात वर्षों में से केवल एक वर्ष ऐसा रहा जब वाणिज्यिक व्यापार का आकार विश्व अर्थव्यवस्था से तेज गति से बढ़ा। सन 2019 में विश्व व्यापार दशक में पहली बार कम हुआ। सन 2020 में महामारी के कारण एक बार फिर ऐसा हुआ। कई देश संरक्षणवादी उपायों को बढ़ावा दे रहे हैं इनमें भारत भी शामिल है।

लोगों के अबाध आवागमन पर विचार कीजिए। दुनिया के आधे से अधिक प्रवासी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में रहते हैं और उनकी तादाद में भी हल्की गिरावट आई है। ब्रेक्सिट और डॉनल्ड ट्रंप की नीतियों से यही संकेत निकला कि पुरानी आव्रजन व्यवस्था को पलटने की प्रक्रिया तेज हो रही है। पश्चिम एशिया के कुछ देशों ने वीजा नीतियों का कड़ा विरोध किया है। यदि ये नए रुझान बरकरार रहते हैं तो भारत को नुकसान होगा। यह दुनिया में प्रवासियों का सबसे बड़ा जरिया है। यही वजह है कि वह धनप्रेषण के मामले में भी दुनिया में अव्वल है।

मुक्त विश्व व्यापार ने बीते तीन दशक में भारत को बहुत लाभ पहुंचाया है। अवसर अभी भी बरकरार है। कई देश दुनिया के सबसे बड़े विनिर्माता और ताकतवर कारोबारी देश चीन पर अपनी निर्भरता कम करना चाहते हैं। भारत इस अवसर का लाभ उठा सकता है लेकिन अन्य देशों के पास पहले कदम उठाने का लाभ है। वैश्वीकरण के अन्य तत्त्व अक्षुण्ण हैं। मिसाल के तौर पर भारत के लिए उपयोगी पूंजी का सीमा पार आवागमन, क्योंकि भारत पूंजी का शुद्ध आयातक है। इसके बाद नई तकनीक का प्रभाव भी है जिसने थॉमस फ्रीडमैन के 'फ्लैट वर्ल्ड' के सिद्धांत को जन्म दिया जिसमें कहा गया कि दुनिया में समान कारोबारी माहौल निर्मित हो रहा है। बेंगलूरु में बैठा कोई अंकेक्षक बॉस्टन के किसी व्यक्ति के कर का आकलन कर सकता है और कोलकाता का कोई रेडियोलॉजिस्ट लंदन में बैठे मरीज के मेडिकल स्कैन का

विश्लेषण कर सकता है। देश की आईटी सेवा क्रांति को कोई खतरा नहीं है। वैश्वीकरण के दूसरे चरण का क्या? अब यह केवल सरकार के एजेंडे के रूप में ही रह गया है। वह देशों और कारोबारों को कैसे प्रभावित करता है यह बात तो आने वाले समय में ही पता चल सकेगी। सरकार का एजेंडा सेट करना भारत के लिए अच्छी खबर नहीं है क्योंकि अभी भी वह अनिवार्य रूप से नियम पालन करने वाला है, न कि नियम बनाने वाला। ऐसे में इसका कोई भी लाभ या लागत संयोग आधारित ही होगी। नई अंतरराष्ट्रीय कॉर्पोरेट कराधान प्रणाली भी एक विषय है जिस पर फिलहाल काम किया जा रहा है। यह उस देश में चुकाए जाने वाले न्यूनतम कर की दर तय करती है जहां राजस्व अर्जित होता है। भारत को इससे प्रसन्न होना चाहिए लेकिन नई व्यवस्था के लागू होने के बाद प्राथमिक लाभार्थी अमीर देश ही होंगे।

जलवायु परिवर्तन एजेंडे की स्थिति और अनूठी है। भारत 2015 के पेरिस समझौते को लागू करने को उत्सुक है लेकिन उसे नई तकनीक अपनाने और पुरानी कोयला आधारित तकनीक त्यागने पर कोई वित्तीय या तकनीकी मदद नहीं मिलेगी। इसके साथ ही कार्बन उत्सर्जन के लिए ऐतिहासिक रूप से जवाबदेह देशों को रियायत मिलेगी। टीकों की अंतरराष्ट्रीय आपूर्ति के मामले में भी हालिया जी 7 बैठक में जिस आंकड़े पर सहमति बनी है वह उल्लेखनीय नहीं है जबकि भारत की कोविड टीके पर पेटेंट समाप्त करने की मांग पर अभी ध्यान दिया जाना बाकी है।

नए वैश्वीकरण का सबसे अहम तत्त्व है सोशल मीडिया मंचों का विकास। बड़ी टेक कंपनियां इस क्षेत्र पर काबिज हैं लेकिन भारत समेत कई देशों में उनका संप्रभु राज्य शक्ति से टकराव हुआ है। अब वक्त आ गया है कि वैश्विक कारोबार के लिए नियम तय हों।

जनसत्ता

Date:26-06-21

कामकाज की नई संस्कृति

अभिषेक कुमार सिंह

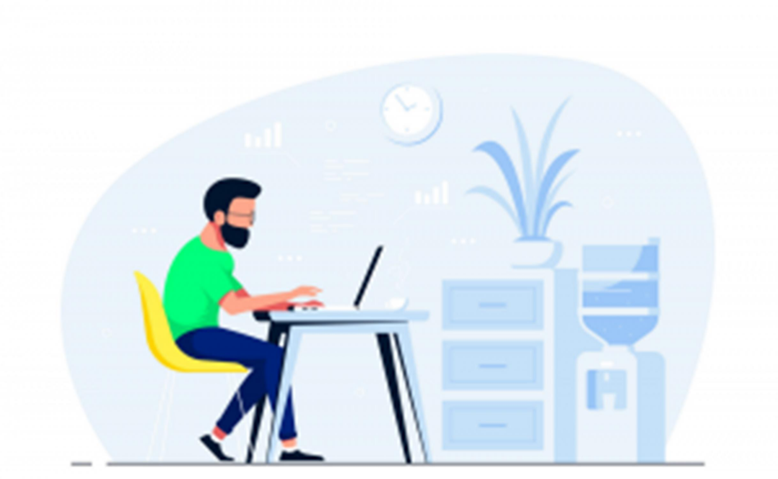

देश के ज्यादातर राज्यों में अब जिंदगी फिर से पटरी पर लौटने लगी है। अब तकरीबन सभी राज्यों ने दफ्तरों, फैक्ट्रियों, दुकानों आदि को खोल दिया है। सरकारी और कई निजी कंपनियों के दफ्तरों में सामान्य उपस्थिति का दावा भी किया जाने लगा है। हाल तक जिन जगहों पर विषाणु के प्रकोप के कारण घर से काम की व्यवस्था लागू की गई थी, महामारी की मार में थोड़ी-सी कमी आने पर इस तरह लोगों को कार्यस्थलों पर बुलाने की नीति सवालों के घेरे में आ गई है। पूछा जा रहा है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कामकाज की ऐसी मिली-जुली व्यवस्था

अपनाई जाए, जिसमें बेहद जरूरी कार्यों को छोड़ कर बाकी काम घर से ही संपन्न कराए जा सकें।

उल्लेखनीय है कि पिछले करीब डेढ़ साल से लोगों के घरों में बंद रहने की विवशता ने काम-धंधे पर बुरा असर डाला है। करोड़ों नौकरियां चली गई हैं। छोटे-मोटे कामकाज ठप पड़ गए हैं। ऐसे में जरूरी हो गया है कि देश की अर्थव्यवस्था और लोगों की रोजी-रोटी को पटरी पर लाया जाए। इसके सबसे सटीक उपाय के रूप में लोगों की काम पर वापसी को तरजीह दी जा रही है। सूचना-तकनीक से जुड़ी नौकरियों के मामले में भी कंपनियों ने अपने कर्मचारियों को फिलहाल घर से काम करने की छूट दी है। लेकिन यह छूट अन्य पेशों में अब प्राय: नहीं दी जा रही है। आवासीय निर्माण क्षेत्र, सड़क व रेल परिवहन, वाहन उद्योग और प्राय: सभी प्रकार की फैक्ट्रियों और कारखानों में कामकाज पूर्व की भांति शुरू हो गया है। वहां कर्मचारियों और मजदूरों को वापस बुला लिया गया है। इससे यह तो तय है कि पटरी से उतर चुकी अर्थव्यवस्था को संभाला जा सकेगा। नौकरियों में कटौती का सिलसिला भी रुकेगा। लेकिन संकट यह है कि अगर तीसरी लहर आ गई और उस दौरान संक्रमण दर व मौतों की संख्या बढ़ने लगी तो क्या होगा। बहुत मुमकिन है कि तब फिर ज्यादातर कर्मचारियों को घर से ही काम करने के लिए कहा जाए। कोरोना काल से पहले सिवाय सूचना प्रौद्योगिकी (आइटी) क्षेत्र के किसी अन्य क्षेत्र में घर से काम को एक वास्तविक समाधान की तरह नहीं देखा जा रहा था। लेकिन अब इसे लेकर नजरिये में अंतर आया है। अब आइटी के अलावा वित्तीय सेवाओं, दूरसंचार, ई-कॉमर्स और उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद-बिक्री से संबंधित कामकाज का ज्यादातर हिस्सा घर बैठे कर्मचारी निपटा रहे हैं।

घर से काम के कुछ उजले पहलू इस कोरोना काल में और उजागर हुए हैं। हाल में एक सर्वे से यह पता लगाने की कोशिश की गई कि घर से काम की नीति को लेकर कर्मचारियों में कितनी संतुष्टि है और इससे उनकी उत्पादकता में क्या अंतर आया है। सर्वे से पता चला कि इंटरनेट की गति, घर में स्थान की कमी और बहुत अधिक वीडियो कॉल किए जाने जैसी चुनौतियों के बावजूद ज्यादातर कर्मचारियों ने घर से काम करने को ज्यादा सुविधाजनक माना और वे इससे संतुष्ट रहे। सबसे आश्चर्यजनक तथ्य यह सामने आया है कि सत्तर फीसद कर्मचारियों की उत्पादकता इस दौरान या तो पहले जैसी रही या फिर उसमें सुधार हुआ। हालांकि कुछ फीसद कर्मचारी असंतुष्ट भी पाए गए। लेकिन ऐसे कर्मचारियों की संख्या महानगरों में चार फीसद और छोटे शहरों में छह फीसद से ज्यादा नहीं रही। सबसे उल्लेखनीय पहलू यह रहा कि घर से काम की नीति को अपनाने से लोगों को घर के कार्यों के लिए भी समय मिल गया, जबकि पहले इसके लिए अलग से छुट्टी लेने की जरूरत होती थी। विशेषत: महिला कर्मचारियों इससे काफी सहूलियतें रहीं। ऐसे निष्कर्षों को देखते हुए अब सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में घर से काम या फिर कामकाज की ऐसी मिली-जुली शैली अपनाने की वकालत होने लगी है, जिसमें बहुत जरूरी होने पर ही कार्यालय में उपस्थिति को अनिवार्य बनाया जाता है।

दरअसल, कामकाज की मिली-जुली शैली कोरोना काल की ज्यादा बड़ी उपज मानी जा सकती है। इसमें कर्मचारियों को चुनिंदा दिनों में कार्यालय में उपस्थित होना पड़ता है, अन्यथा नहीं। कार्यालय में उपस्थित होने का बड़ा कारण किसी महत्त्वपूर्ण बैठक में हिस्सा लेना या फिर कोई जरूरी दस्तावेज अपने अधिकारियों या मातहतों तक पहुंचाना होता है। मोटे तौर पर माना जा रहा है कि इस तरह की कार्यशैली के तहत कर्मचारी पचास फीसद काम घर बैठे ही संपन्न कर सकते हैं और शेष पचास फीसदी के लिए ही उन्हें दफ्तर आने की जरूरत होगी। मिली-जुली शैली वाले कामकाज का यह मॉडल आइटी और वित्तीय सेवाओं से अलग किस्म की नौकरियों पर लागू होता है, क्योंकि आइटी जैसे क्षेत्रों में तो तकरीबन सौ फीसद काम घर बैठ संपन्न हो रहे हैं। इसमें हैरानी नहीं कि सर्वेक्षण में हिस्सा लेने वाले बावन फीसद लोगों ने इस मिली-जुली शैली वाली व्यवस्था को अपनी प्राथमिकता के विकल्प में चुना। यह विकल्प चुनने वाले लोगों में से

इकतालीस फीसद ने हफ्ते में तीन दिन दफ्तर आकर काम करना जरूरी माना, जबकि पच्चीस फीसद ने सप्ताह में दो ही दिन कार्यालय में उपस्थिति को अनिवार्य बताया।

घर से कामकाज की संस्कृति कर्मचारियों के लिए ही फायदेमंद नहीं है, बल्कि इससे कई बड़ी कंपनियों को अपने खर्च में भारी-भरकम कटौती करने का मौका भी मिल गया है। जैसे इंटरनेट कंपनी गूगल से संबंधित कंपनी- अल्फाबेट ने वर्ष 2019 के मुकाबले पिछले एक साल की अवधि में कंपनी के प्रचार-प्रसार, यात्रा और कर्मचारियों के मनोरंजन आदि पर होने वाले खर्च में करीब दो हजार करोड़ रुपए की बचत कर ली। यही नहीं, इसी अवधि में कंपनी की आय में चौंतीस फीसद तक की बढ़ोत्तरी हुई, क्योंकि कर्मचारियों ने घर से काम करने की वजह से बहुत ही कम छुट्टियां लीं। इस तरह कंपनी को दोहरा फायदा हुआ। असल में गूगल अपने कर्मचारियों को यात्रा, मनोरंजन आदि तमाम मदों में ढेरों भत्ते देने के लिए मशहूर है। चूंकि इस कंपनी के कर्मचारियों ने मार्च, 2020 से इन भत्तों को नहीं लिया, इससे कंपनी की काफी बचत हुई। इससे प्रेरित होकर गूगल कंपनी कामकाज की एक नई संस्कृति विकसित कर रही है, जिसमें दफ्तर में कर्मचारियों के लिए बहुत कम जगह होगी। गूगल की तरह ही भारत में टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज (टीसीएस) जैसी आइटी कंपनी ने तो पिछले ही साल यह घोषणा कर दी थी कि उसकी योजना वर्ष 2025 तक अपने पचहत्तर फीसद कर्मचारियों को घर से काम करने देने की है। टीसीएस ने इस नए मॉडल को कथित तौर पर 25/25 कहा है, जिसमें सौ फीसद उत्पादकता के लिए पच्चीस फीसद से ज्यादा कर्मचारियों के लिए दफ्तर आने की जरूरत नहीं है।

दुनिया चलाने के ऑनलाइन प्रबंधों का कितना ज्यादा फायदा हमारी पृथ्वी और प्रकृति को हो सकता है, यह बात बीते डेढ़ साल में स्वच्छ हुए पर्यावरण और जीवों को मिली आजादी के रूप में दिखने लगी है। घर को दफ्तर में बदलने की जरूरत असल में अब इसलिए भी ज्यादा है कि ज्यादातर शहरों में घरों से दफ्तर की दूरियां बढ़ रही हैं। व्यावसायिक इलाकों में जमीन और दफ्तरों का किराया काफी महंगा है, जिसे चुकाना कंपनियों को भारी पड़ता है। इस पर दफ्तरों को रोशनी से जगमगाए रखने और वातानुकूलन के प्रबंध करने में बिजली का बेइंतहा खर्च भी दबाव पैदा करता है। कामकाजी आबादी के दफ्तर पहुंचने में बढ़ती दूरियों के अलावा यातायात जाम, जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल, ग्रीनहाउस प्रभाव और परिवहन के बढ़ते खर्च जैसी भी कई अन्य बाधाएं हैं, जिनका समाधान घर से काम की संस्कृति में नीहित है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:26-06-21

लोकतंत्र का दीया

संपादकीय

केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक प्रक्रिया बहाल करने के मुद्दे पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की ओर से प्रदेश के नेताओं की बैठक का आयोजन और उसमें हुआ विचार-विमर्श लोकतंत्र की ताकत की निशानदेही कराता है। लोकतंत्र का दीया आतंकवाद और पृथकतावाद के तूफान को हरा सकता है यह इस बैठक ने स्पष्ट कर दिया। इस बैठक से यह

भी स्पष्ट हुआ कि प्रदेश में बहुत जल्द राजनीतिक प्रक्रिया बहाल की जाएगी। बैठक में प्रधानमंत्री ने नेताओं को यह भरोसा भी दिलाया कि चुनाव के बाद जम्मू-कश्मीर को पूर्ण राज्य का दरजा भी दिया जाएगा। 5 अगस्त 2019 को संविधान का अनु. 370 हटाए जाने के बाद केंद्र और राज्य के प्रमुख नेताओं के बीच यह पहली बैठक थी, जिसे सभी नेताओं ने सराहा। बैठक की सबसे बड़ी सफलता इस बात से भी जाहिर होती है कि अनु. 370 का मुद्दा बैठक में बाधक नहीं बना। जम्मू-कश्मीर राज्य का विशेष दरजा समाप्त करने के बाद वहां के कुछ प्रमुख राजनीतिक नेताओं को जेल में ड़ाल दिया गया था और कुछेक को नजरबंद किया गया था। जाहिर है इसके कारण केंद्र और प्रदेश के नेताओं के बीच कटुता बढ़ गई थी। दो वर्ष पहले जब संसद में जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन विधेयक पेश किया गया था तब विपक्षी नेताओं ने इसे अंधकार युग की शुरुûआत करार दिया था। पीड़ीपी की नेता महबूबा मुफ्ती जैसे नेताओं ने तो ज्वालामुखी फटने की चेतावनी दी थी, जिसकी जद में प्रदेश ही नहीं बल्कि पूरा मुल्क आ सकता है। पिछले दो वर्ष के घटनाक्रम ने इन सब आशंकाओं को निर्मूल साबित कर दिया। मोदी सरकार ने जो राजनीतिक जुआ खेला था उसमें वह सफल रही। इससे भाजपा को राजनीतिक फायदा हुआ यह कम महत्व का है। वास्तव में इस फैसले से राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूती मिली तथा आतंकवाद और पृथकतावाद की कमर टूट गई। देश में विरोध के सुरों के साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो दुष्प्रचार अभियान चलाया गया उसे प्रदेश और देश के लोगों ने नाकाम कर दिया। हाल ही में केंद्र ने प्रदेश के औद्योगिक विकास के लिए 28 हजार 400 करोड़ रुपय के कुल परिव्यय के साथ वर्ष 2037 तक मंजूरी दी गई है। इसका मुख्य लाय रोजगार सृजन करना है। उम्मीद की जानी चाहिए कि प्रदेश में शांति और विकास की प्रक्रिया जारी रहेगी।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:26-06-21

दिल और दिल्ली से अब भी दूर

राहुल पंडिता, (वरिष्ठ पत्रकार)

जम्मू-कश्मीर में सियासी गतिरोध तोड़ने की जो नई पहल हुई है, वह बहुत भरोसा नहीं जगाती। दोनों पक्ष (केंद्रीय नेतृत्व और जम्मू-कश्मीर के नेतागण) एक-दूसरे के खिलाफ शह-मात में उलझे हुए हैं। यह एक प्रतीकात्मक बातचीत थी, जिसका शायद ही ठोस निष्कर्ष निकले। ऐसा इसलिए, क्योंकि दोनों पक्षों के पास कोई साझा एजेंडा नहीं दिख रहा। अनुच्छेद-370 का जिक्र जरूर किया जा रहा है, लेकिन घाटी के नेतागण भी जानते हैं कि इसकी फिर से बहाली संभव नहीं।

गुरुवार की बैठक से जम्मू-कश्मीर के आम लोग भी निराश हैं। जिन स्थानीय नेताओं को भारतीय जनता पार्टी के नेता पिछले दो-ढाई वर्षों से 'राष्ट्र-विरोधी गैंग' बुलाते रहे, आज उसी के साथ तस्वीरें साझा करने की बेशक उनके शीर्ष नेतृत्व की मजबूरी हो, लेकिन ऐसी सियासत से घाटी में एक अलग आफत खड़ी हो सकती है। इससे अवाम भ्रमित होता है। अगर गुपकार में शामिल नेता राष्ट्र-विरोधी हैं, तो उनके साथ भला मंच कैसे साझा किया जा सकता है? ऐसी ही उलझन कश्मीर में अलगाववाद को खाद-पानी देती है। विगत की सरकारों ने भी पिछले सात दशकों में यही किया है। उन्होंने कश्मीर की मुख्यधारा के नेताओं को इतनी छूट दी कि वे दिल्ली में अलग जुबान बोलते हैं और कश्मीर में अलग। इस

बार भी जैसे ही सर्वदलीय बैठक का एलान हुआ, पीडीपी नेता महबूबा मुफ्ती ने पाकिस्तान से बात का राग अलापना शुरू कर दिया, जबकि बैठक में उन्होंने इस पर चुप्पी साधे रखी।

केंद्र की तरफ से यह कोशिश होनी चाहिए थी कि ऐसा कोई संदेश न जाए, पर ऐसा हो नहीं सका। दिक्कत यह भी है कि अनुच्छेद-370 को हटाने के बाद जम्मू-कश्मीर में पीडीपी और नेशनल कॉन्फ्रेंस के समानांतर कोई विकल्प खड़ा करने का भाजपा का सपना साकार नहीं हो सका, जबकि इसके लिए हालात मुफीद थे। दरअसल, यहां के एक बड़े वर्ग को राज्यपाल शासन (अब राष्ट्रपति शासन) पसंद है। इससे उनकी कई समस्याओं का समाधान हो जाता है। कानून-व्यवस्था भी ठीक रहती है और शासन-प्रशासन से जुड़ी उनकी ज्यादातर शिकायतें भी दूर हो जाती हैं। हालांकि, लोकतंत्र में बहुत दिनों तक राष्ट्रपति शासन संभव नहीं है, लेकिन लोग यही चाहते हैं कि अलगाववाद के अंत के बाद ही चुनाव हों। अनुच्छेद-370 के हटने के बाद केंद्र की मुद्रा से अवाम में यही संदेश गया कि इस बार उनकी मुश्किलों का अंत हो जाएगा। मगर केंद्र ने फिर से उन्हीं नेताओं से हाथ मिला लिया, जिन पर अलगाववाद को शह देने के आरोप लगते रहे हैं, इसलिए लोगों की उम्मीदें फिर से टूटने लगी हैं।

गुरुवार की बैठक में मूलत: तीन मसलों पर चर्चा हुई, परिसीमन, पूर्ण राज्य का दर्जा और विधानसभा चुनाव। मगर ये मुद्दे भी कश्मीरियों को संतुष्ट नहीं कर सकेंगे। परिसीमन पर तो चुनाव आयोग भी अभी साफ-साफ कुछ कह सकने की स्थिति में नहीं है। केंद्र की मंशा यही दिख रही है कि वह इसके बहाने जम्मू के हिंदू बहुल क्षेत्रों के मतदाताओं को अपनी तरफ कर ले। यहां के हिंदुओं की यह वाजिब नाराजगी है कि स्थानीय राजनीति में उनको नजरंदाज कर दिया गया है। भाजपा को लग रहा होगा कि परिसीमन के बाद कुछ ऐसी सीटें निकलकर सामने आ सकती हैं, जिनसे उसे भी फायदा होगा और स्थानीय हिंदू मतदाताओं को भी।

कुछ इसी तरह का गुस्सा कश्मीरी पंडितों का भी है। उनका कोई नुमाइंदा तो सर्वदलीय बैठक में भी नहीं था, जबकि घाटी में इनकी वापसी भाजपा के लिए एक बड़ा चुनावी मुद्दा रहा है। इस बाबत कोई ब्लू-प्रिंट सरकार के पास नहीं है। संभवत: इसकी वजह यह है कि कश्मीरी पंडित बहुत छोटा वोट-बैंक है। उनसे यह तो अपेक्षा की जाती है कि 90 के घाव को भुलकर वे लौट आएं, लेकिन इसके लिए सरकार एक कदम भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं दिख रही। आलम यह है कि अशांति के दौर में 700 के करीब कश्मीरी पंडितों की हत्या के मामले में कोई भी दोषी साबित नहीं हो सका है। इन लोगों की रिहाइश के लिए जमीन की पहचान करने का काम भी अब तक कागजों पर चल रहा है।

जाहिर है, दिल्ली और दिल की दूरी खत्म करने जैसी बातें सुनने में ही अच्छी लग रही हैं। वास्तव में, ये हमें सच से दूर ले जाएंगी। लोग यहां विकल्प की तलाश में हैं। कभी-कभी वे इतने हताश हो जाते हैं कि उन्हें तमाम पाटियां सियासी गटर में डूबती-उतराती नजर आती हैं। मुझे यहां साल 2014 का एक वाकया याद आ रहा है। आम चुनाव की घोषणा हो चुकी थी और आम आदमी पार्टी के संयोजक अरविंद केजरीवाल भाजपा की तरफ से घोषित प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी के खिलाफ चुनाव लड़ने का एलान कर चुके थे। इसके लिए मनीष सिसोदिया ने वाराणसी में डेरा डाल रखा था, जहां एक होटल में मेरी उनसे मुलाकात हुई। उस बातचीत में उन्होंने अपनी वह डायरी भी दिखाई, जिसमें देश भर से पार्टी को आ रहे फोन नंबर दर्ज थे। उन्होंने बताया कि किस तरह से उन्हें दिल्ली, पंजाब, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के मतदाताओं का प्यार मिल रहा है। इसी क्रम में उन्होंने जम्मू-कश्मीर का खास जिक्र किया था और यह बताया था कि यहां के लोगों में भी आप को लेकर काफी उत्साह है।

जब अनुच्छेद 370 हटाया गया, तब एक बडे वर्ग में यह उम्मीद और परवान चढ़ गई थी। केंद्र सरकार के पास सुनहरा मौका था कि वह नया जनादेश लाती, ताकि भारत-हितैषी राजनीति की तरफ लोग प्रेरित होते, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। कश्मीर के साथ दुर्भाग्य यह है कि यहां की पार्टियां अपने-अपने हित में अलगाववादियों से नजदीकी और दूरी बनाती रही हैं। अनुच्छेद 370 के हटने के बाद लगा था कि केंद्र ने एक लक्ष्मण रेखा खींच दी है। मगर गुरुवार की बातचीत के बाद यह भ्रम टूटता हुआ लग रहा है। केंद्र सरकार को ज्यादा संभलकर चलना होगा। अब सभी दल रेखा की एक तरफ खडे दिख रहे हैं, जिससे अवाम को शायद ही कोई फायदा हो।

Date:26-06-21

बढ़ती गरमी से घटती जा रही है हमारी उत्पादकता

अनंत सुदर्शन, (दक्षिण एशिया निदेशक, ऊर्जा नीति संस्थान, शिकागो यूनिवर्सिटी)

सदी की सबसे विनाशकारी महामारी से लड़ रहे भारत के लिए फिलहाल अन्य चुनौतियों के बारे में सोचना कठिन जान पड़ता है। हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि कोरोना महामारी से भारत को जितना आर्थिक नुकसान पहुंचा है, उतना दुनिया के किसी भी देश को नहीं हुआ। हमारी आर्थिक सेहत आसानी से सुधरने वाली भी नहीं है, और अगले दशक में स्थिर व टिकाऊ विकास सुनिश्चित करने की एक बड़ी नीतिगत चुनौती रहेगी। इसमें बेशक विनिर्माण, यानी मैन्युफैक्र्चरंग सेक्टर अगुवा साबित हो, लेकिन इस तरह के विकास को जलवायु संकट के आसन्न खतरे से भी निपटना होगा।

इस लिहाज से 'जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी' में प्रकाशित अध्ययन भारत के लिए चिंताजनक है। हमने इसमें पहले देश भर की फैक्टरियों के उत्पादन, और कुछ खास शहरों में कल-कारखानों की रोजाना की उत्पादकता व चुनिंदा कामगारों की उपस्थिति के आंकड़े जुटाए, और फिर उन आंकड़ों को मौसम की रोजाना की देशव्यापी दशा से मिलाया। अंत में, सांख्यिकीय मॉडल का उपयोग करके दोनों में संबंध जोड़े। यह अध्ययन बताता है कि उच्च तापमान कामगारों की उत्पादकता कम करता है, जिससे आर्थिक उत्पादन को लगातार नुकसान पहुंच रहा है। इक्का-दुक्का मामलों में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन जब बड़े पैमाने पर ऐसा हो, तो इसका नुकसान होता है। जैसा कि हमने पाया, वार्षिक तापमान में एक डिग्री की वृद्धि होने पर फैक्टरियों की आमदनी दो प्रतिशत घट गई। यह संयोग नहीं है कि पिछले दशकों के वैज्ञानिक अध्ययन भी यह बताते रहे हैं कि गरम वर्षों में देशों को सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और विकास, दोनों मोर्चों पर लगातार नुकसान हुआ है।

बढ़ते तापमान का सबसे बुरा असर उन फैक्टरियों पर पड़ता है, जहां श्रमिकों की प्रधानता है। यह भारत के लिए एक बड़ी समस्या है, क्योंकि भविष्य में मैन्युफैक्चरिंग में हमारी प्रतिस्पद्र्धा इसी सस्ते श्रम पर निर्भर रहने वाली है। जैसे-जैसे तापमान बढ़ेगा, कामगारों की कुशलता कम होगी, और हमारे लिए वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहुत मामूली अंतर से पिछड़ने का खतरा पैदा होगा। इसीलिए भारत 'हीट टैक्स' जैसा कोई कर लगा सकता है, जो समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ता चला जाएगा। दिक्कत यह है कि तापमान को नियंत्रित कर लेने से इस मसले का पूर्ण समाधान नहीं हो सकता। इसकी एक वजह यह है कि 'हीट टैक्स' एयर कंडीशनिंग के कारण बिजली बिल के रूप में भी दिखेगा। बड़ी फैक्टरियां तो इसका भार

सहन कर लेंगी, लेकिन लघु व सूक्ष्म उद्योग या फिर अनौपचारिक क्षेत्र की कंपनियों के लिए शायद यह संभव न हो। और फिर, श्रमिक या उनके परिजन घर पर भीषण गरमी में ही दिन गुजारेंगे।

श्रम और तापमान का यह संबंध इंसान के मनोविज्ञान से जुड़ा है। नीति इसको नहीं बदल सकती। हालांकि, विनिर्माण उत्पादन पर इसका असर इससे भी प्रभावित होगा कि फैक्टरियां कहां स्थित हैं, क्या वे मजदूरों को प्रमुखता से इस्तेमाल करती हैं और तापमान कितना बढ़ता है? हम फिलहाल अनुमान ही लगा सकते हैं, लेकिन कंपनियां यह गुणा-भाग कर सकती हैं कि क्या उत्तर भारत की भीषण गरमी में कोई दुकान खोलना समझदारी होगी। यदि वे ऐसा करना पसंद करती हैं, तो संभव है, जलवायु नियंत्रण में वे निवेश कर सकती हैं, लेकिन वे ऑटोमेटिक व्यवस्था पर भी विचार कर सकती हैं।

लिहाजा, अन्य स्थानों पर जाना उनके लिए कहीं ज्यादा मुफीद होगा। रोबोट और स्थानांतरण, ये दोनों चीजें भारत में रोजगार वृद्धि और आर्थिक समृद्धि के भौगोलिक संतुलन को प्रभावित कर सकती हैं। जबकि हम जानते हैं कि गंगा के मैदानी इलाकों में जलवायु परिवर्तन के कारण पैदावार गिरने के कयास लगाए जा रहे हैं। साफ है, हमें उत्तर भारत में 'क्लाइमेट-रिजिल्यन्ट ग्रोथ' (जलवायु के नकारात्मक प्रभावों को कम से कम करते हुए विकास करना) पर गंभीरता से सोचना शुरू कर देना चाहिए। हमें कम लागत वाली कूलिंग तकनीक में शोध-कार्यों के लिए धन की जरूरत है। छोटी फैक्टरियां उन हिस्सों में एयर कंडीशनिंग कर ही सकती हैं, जहां श्रमिक ज्यादा रहते हैं। और अंत में, कुशल श्रम फैक्टरी का मूल्य बढ़ा देता है, इसलिए कामगारों का तकनीकी प्रशिक्षण आवश्यक है, खासकर देश के गरम हिस्सों में।